

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 8: कुन्ती की स्तुति

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



हाथ जोड़े हुए महारानी कुन्ती श्रीकृष्ण के समक्ष खड़ी हैं, जब वे द्वारका के लिए प्रस्थान करने को हैं, और समस्त शास्त्रों की सर्वाधिक प्रिय स्तुतियों में से एक प्रकट करती हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। महायुद्ध समाप्त हो चुका है। कुरुक्षेत्र का मैदान नीरव है, अन्त्येष्टि-क्रियाएँ सम्पन्न हो गई हैं, और शोक से जर्जर हृदय लिये बचे हुए परिजन पवित्र गंगा के तट पर एकत्र हैं। इसी थकान में प्रथम स्कन्ध का यह आठवाँ अध्याय समस्त शास्त्र के दो सबसे कोमल प्रसंग लाता है: एक अजन्मे शिशु की

रक्षा, और एक विधवा महारानी की वह स्तुति जो सुख नहीं, अपितु विपत्ति माँगती है — जिससे वह भगवान् को कभी न भूले। यहाँ भक्ति विजय में नहीं, अपितु शोक में प्रकट होती है, और इसी से वह और भी उज्ज्वल हो उठती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 8 (अष्टम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: महारानी कुन्ती की वन्दना और गर्भ में परीक्षित की रक्षा
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (कथावाचक); महारानी कुन्ती (पृथा); उत्तरा; राजा युधिष्ठिर
- प्रमुख श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में
- मुख्य स्थल: महाभारत-युद्ध के पश्चात् गंगा-तट तथा हस्तिनापुर नगर
- केन्द्रीय विषय: गर्भस्थ शिशु परीक्षित की भगवद्-रक्षा, महारानी कुन्ती की प्रसिद्ध स्तुति, तथा राजा युधिष्ठिर का पश्चात्ताप
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 1-52
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से सन्दर्भ

सप्तम अध्याय में युद्ध की वेदना अपने क्रूर चरम पर पहुँची। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों का वध कर दिया था और बँधा हुआ शिविर में लाया गया। उसका वध करने के बजाय अर्जुन ने — श्रीकृष्ण के मन को समझकर — उस पतित ब्राह्मण का सिर मूँड़ दिया, उसकी मणि छीन ली, और उसे अपमानित कर निकाल बाहर किया। तत्पश्चात् शोकाकुल पाण्डवों ने अपने दिवंगत परिजनों की अन्त्येष्टि सम्पन्न की। इसी शमशान-भूमि और इसी भारी शोक से आठवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

गंगा-तट पर जलांजलि

विधवा स्त्रियों को आगे कर, और श्रीकृष्ण को साथ लेकर, समस्त परिवार अपने दिवंगत परिजनों को — जो ऐसी जलांजलि की प्रतीक्षा में थे — जल अर्पित करने गंगा के तट पर गया। जल अर्पित कर और मृतकों के लिए फूट-फूटकर रोकर, वे सब पुनः उस पवित्र सरिता में स्नान करने उतरे — जिसका जल श्रीहरि के चरणकमलों की रज के स्पर्श से और भी पावन हो गया था।



विधवा स्त्रियों को आगे कर और श्रीकृष्ण को साथ लेकर परिवार पवित्र गंगा के तट पर अपने दिवंगत परिजनों को जल अर्पित करता है।

वहाँ शोक में एक साथ बैठे थे राजा युधिष्ठिर और उनके छोटे भाई, अन्धे राजा धृतराष्ट्र, अपने सौ पुत्रों के वियोग से पीड़ित गान्धारी, कुन्ती, और द्रौपदी — सब अपने स्वजनों के नाश से शोकमग्न। यह दिखाते हुए कि प्रत्येक प्राणी उस मृत्यु के अधीन है जिसे टाला नहीं जा सकता, भगवान् माधव तथा धौम्य आदि ऋषियों ने शोकाकुल जनों को कोमलता से सान्त्वना दी। तत्पश्चात् जुआरियों द्वारा हड़प लिये गये राज्य को युधिष्ठिर को लौटाकर, और उत्तम सामग्री से तीन अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराकर, श्रीकृष्ण ने राजा की पवित्र कीर्ति को दिशा-दिशा में फैला दिया।

कृष्ण का प्रस्थान, और उत्तरा की शरणागति

सान्त्वना का कार्य पूर्ण कर भगवान् ने पाण्डुपुत्रों से विदा ली और द्वैपायन (व्यास) आदि पूज्य ब्राह्मणों को प्रणाम किया, जिन्होंने उनका प्रत्युत्तर में सम्मान किया। फिर वे अपने रथ पर आरूढ़ हुए और सात्यकि तथा उद्धव को साथ लेकर द्वारका के लिए प्रस्थान करने ही वाले थे कि — हे शौनक — उन्होंने अभिमन्यु की तरुण विधवा उत्तरा को भय से विह्वल होकर अपनी ओर दौड़ती हुई देखा।



गर्भवती महारानी उत्तरा, अभिमन्यु की विधवा, भय से विह्वल होकर श्रीकृष्ण की ओर दौड़ती है और अपने गर्भस्थ शिशु की रक्षा की याचना करती है (श्लोक 10)।

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ।

नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥

uttarovāca pāhi pāhi mahā-yogin deva-deva jagat-pate । nānyaṁ tvad abhayaṁ paśye yatra mṛtyuḥ parasparam ॥ 9 ॥

अर्थ: उत्तरा ने कहा — रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, हे महायोगी! हे देवों के देव, हे जगत्पते! इस संसार में, जहाँ प्रत्येक प्राणी दूसरे के लिए मृत्यु-रूप है, मुझे आपके अतिरिक्त कोई अभयदाता नहीं दिखता। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 9)

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ।

कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥

abhidravati mām īśa śaras taptāyaso vibho । kāmam dahatu mām nātha mā me garbho nipātyatām ॥ 10 ॥

अर्थ: हे सर्वशक्तिमान् प्रभो! तप्त लोहे का एक बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। हे नाथ! यह मुझे भले ही जला दे, किन्तु मेरे गर्भ के शिशु का नाश न हो। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 10)

ब्रह्मास्त्र और चक्र को शरण

उसके वचन सुनकर, भक्तवत्सल भगवान् तत्काल समझ गये कि यह अश्वत्थामा द्वारा पाण्डव-वंश के उच्छेद हेतु छोड़ा गया अस्त्र है। उसी क्षण, हे ऋषिश्रेष्ठ, पाण्डुपुत्रों ने भी अपनी ओर आते हुए पाँच प्रज्वलित बाण देखे और प्रत्येक ने अपना-अपना अस्त्र उठा लिया। अपने उन स्वजनों पर — जो उनके अतिरिक्त और किसी का चिन्तन नहीं करते थे — संकट देखकर, सर्वशक्तिमान् भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उनकी रक्षा की। और योगेश्वर श्रीहरि ने, जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित आत्मा हैं, कुरु-वंश की रक्षा के लिए अपनी माया से उत्तरा के गर्भ को आवृत कर लिया।



समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी श्रीकृष्ण अपनी दिव्य शक्ति से उत्तरा के गर्भ की रक्षा करते हैं और कुरु-वंश की रक्षा करते हैं (श्लोक 14)।

अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ।

स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥ १४ ॥

antaḥsthaḥ sarva-bhūtānām ātmā yogeśvaro hariḥ । sva-māyayāvṛṇod garbhaṁ vairāṭyāḥ kuru-tantave ॥ 14 ॥

अर्थ: योगेश्वर श्रीहरि ने, जो समस्त प्राणियों के भीतर उनकी आत्मा-रूप में विराजमान हैं, कुरु-वंश की परम्परा को अक्षुण्ण रखने हेतु राजा विराट की पुत्री उत्तरा के गर्भ को अपनी दिव्य माया से आवृत कर लिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 14)

यद्यपि ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित अस्त्र अमोघ और अप्रतिहत है, तथापि भगवान् के तेज से मिलते ही वह शान्त हो गया। कथावाचक कहते हैं कि अच्युत भगवान् के विषय में यह कोई आश्चर्य नहीं, जो स्वयं अजन्मा होते हुए भी अपनी माया से समस्त जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। इसी प्रकार गर्भ में रक्षित वह शिशु आगे चलकर सम्राट परीक्षित के रूप में जन्म लेगा — वही राजा जो इस स्कन्ध के अन्त में स्वयं भागवत का श्रवण करता है।

महारानी कुन्ती को स्तुति

जब श्रीकृष्ण अन्ततः प्रस्थान करने को हुए, तब साध्वी पृथा — महारानी कुन्ती — अपने उन पुत्रों सहित जो अभी-अभी अस्त्र की अग्नि से बचे थे, और अपनी पुत्रवधू द्रौपदी सहित, उनके समक्ष आई। और पाण्डवों की माता, भगवान् की बुआ, कुन्ती ने वह स्तुति उच्चारित की जिसे भक्तजन तभी से हृदय में धारण करते आये हैं।

उन्होंने आरम्भ किसी याचना से नहीं, अपितु समर्पण से किया। उन्हें प्रकृति से परे उस आदिपुरुष के रूप में प्रणाम करते हुए, जो समस्त प्राणियों के भीतर और बाहर विराजमान हैं, उन्होंने उनकी महत्ता के समक्ष अपनी लघुता स्वीकार की।

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।

अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥

kunty uvāca namasye puruṣaṁ tvādyam īśvaraṁ prakṛteḥ param । alakṣyaṁ sarva-bhūtānām antar bahir avasthitam ॥ 18 ॥

अर्थ: महारानी कुन्ती ने कहा — मैं आपको प्रणाम करती हूँ, हे आदिपुरुष, प्रकृति से परे परमेश्वर, अलक्ष्य, समस्त प्राणियों के भीतर और बाहर विराजमान। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 18)

उन्होंने कहा — आप माया के परदे से आवृत हैं और मन्द दृष्टि वाला व्यक्ति आपको पहचान नहीं पाता — जैसे रंगमंच का वेशधारी नट अपने वास्तविक रूप में नहीं जाना जाता। तब हम सरल स्त्रियाँ आपको कैसे जान सकती हैं, जो निर्मल-चित्त परमहंस मुनियों के हृदय में भक्ति जगाने के लिए हमारे मध्य प्रकट हुए हैं?

कमल-चिह्नित प्रभु को प्रणाम

तत्पश्चात् कुन्ती ने भगवान् को उनके सर्वप्रिय रूपों में बार-बार प्रणाम किया — वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण, देवकी के आनन्द, नन्द के पालित बालक, गोविन्द। उन्होंने उन्हें प्रणाम किया जिनका प्रत्येक अंग कमल का स्मरण कराता है: नाभि, माला, नेत्र और चरण।



महारानी कुन्ती उस प्रभु को प्रणाम करती हैं जिनकी नाभि, माला, नेत्र और चरण सभी कमल-सदृश हैं (श्लोक 22)।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।

नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २२ ॥

namaḥ paṅkaja-nābhāya namaḥ paṅkaja-māline / namaḥ paṅkaja-netrāya namas te paṅkajāṅghraye ॥ 22 ॥

अर्थ: उन्हें प्रणाम जिनकी नाभि में कमल है; उन्हें प्रणाम जो कमलों की माला धारण करते हैं; उन्हें प्रणाम जिनके नेत्र कमल-सदृश हैं; उन्हें प्रणाम जिनके चरण कमल के समान हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 22)

जैसे उन्होंने अपनी माता देवकी को, जो दुष्ट कंस द्वारा दीर्घकाल तक कारागार में बन्द थीं, उद्धार किया — वैसे ही, कुन्ती ने स्मरण किया, उन्होंने बार-बार उन्हें और उनके पुत्रों को विपत्तियों की एक लम्बी शृंखला से बचाया — विष से, महान् अग्नि से, नरभक्षी राक्षसों से, दुष्टों की सभा से, वनवास के संकटों से, प्रत्येक युद्ध में अनेक महारथियों के अस्त्रों से, और अब अश्वत्थामा के अस्त्र से।

विपत्ति की प्रार्थना

तत्पश्चात् वे वचन आये जिनके कारण यह स्तुति सर्वाधिक प्रिय है। अपने कष्टों के अन्त की याचना करने के बजाय महारानी कुन्ती ने उनकी निरन्तरता माँगी — एक अनमोल कारण से।



कुन्ती प्रार्थना करती हैं कि विपत्तियाँ बार-बार आती रहें, क्योंकि विपत्ति में ही उन्हें भगवान् के उस दर्शन का सौभाग्य मिलता है जो समस्त पुनर्जन्म का अन्त कर देता है (श्लोक 25)।

विपदः सन्तु ताः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥

vipadaḥ santu tāḥ śaśvat tatra tatra jagad-guro । bhavato darśanam yat syād apunar bhava-darśanam ॥ 25 ॥

अर्थ: हे जगद्गुरो! वे विपत्तियाँ पग-पग पर बार-बार आती रहें — क्योंकि विपत्ति में ही आपका दर्शन होता है, और आपके दर्शन का अर्थ है समस्त पुनर्जन्म का अन्त। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 25)

क्योंकि, उन्होंने समझाया, उच्च कुल, शक्ति, विद्या और धन के अभिमान से फूला व्यक्ति भगवान् का नाम तक नहीं ले पाता; भगवान् केवल उसी को प्रकट होते हैं जिसके पास अपना कहने को कुछ नहीं। वे उन अकिंचनों के धन हैं, प्रकृति के तीनों गुणों के व्यापार से परे, अपने ही स्वरूप में सन्तुष्ट, परम शान्त, कैवल्य-मोक्ष के अधिपति।

अवतारी प्रभु का रहस्य

फिर कुन्ती ने प्रकट रूप से उस महान् रहस्य पर चिन्तन किया कि वे कौन हैं। उन्होंने उन्हें काल — कालस्वरूप — माना, आदि-अन्त-रहित सर्वशक्तिमान् शासक, समस्त प्राणियों में समभाव से व्याप्त, और फिर भी वही निमित्त जिसके द्वारा प्राणी परस्पर संघर्ष करते हैं। जब वे मनुष्यों के मध्य लीला करते हैं तब उनका अभिप्राय कोई नहीं जान सकता; उनके लिए न कोई प्रिय है न अप्रिय, यद्यपि लोग अपनी भेद-दृष्टि में अन्यथा कल्पना करते हैं। वे जगत् की आत्मा हैं और स्वयं जगत् भी, जन्म और कर्म से रहित — और फिर भी वे देवों, मनुष्यों, पशुओं और ऋषियों में जन्म लेते और कर्म करते हैं, केवल लीला-रूप में।

वे, एक माँ के विस्मय के साथ, सबसे मधुर स्मृति पर ठहरें: कैसे, जब बालक कृष्ण ने अपनी पालक-माता यशोदा को क्रुद्ध किया और वे उन्हें बाँधने के लिए रस्सी ले आई, तब वे मुख झुकाये, भय से नेत्र घुमाते, अश्रुओं में धुले काजल के साथ खड़े रहे। जिनसे भय स्वयं भयभीत रहता है, वे एक गोपी के समक्ष भय से थरथराते खड़े हों — यह, कुन्ती ने कहा, मन को विमोहित कर देता है। कुछ कहते हैं कि वे यदुवंश का यश बढ़ाने हेतु उसमें अवतरित हुए, जैसे चन्दन-वृक्ष मलय पर्वत को सुगन्ध प्रदान करता है; अन्य कहते हैं कि वे जगत् की रक्षा और देव-शत्रुओं के संहार हेतु देवकी से उत्पन्न हुए; और कुछ, कि वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर पृथ्वी का भार उतारने हेतु अवतरित हुए। और कुछ मानते हैं कि वे केवल उन कार्यों को करने आते हैं जो अज्ञान, कामना और स्वार्थ से सन्तप्त जनों के श्रवण और गान के योग्य हों — इसीलिए उनके भक्त सदा उनकी कथाओं का श्रवण, गान और चिन्तन करते हैं, और शीघ्र ही उनके उन चरणकमलों का दर्शन पाते हैं जो जन्म-मृत्यु के प्रवाह का अन्त कर देते हैं।

पीछे छूट जाने का भय

इस विस्मय के मध्य भी कुन्ती एक सीधी-सादी आशंका को दबा न सकीं। उन्होंने कहा — आपने अपने समस्त कर्तव्य पूर्ण कर लिये हैं, तो क्या आप आज हमें छोड़ जाएँगे, जबकि हमारे पास आपके अतिरिक्त कोई शरण नहीं और समस्त राजा हमारे विरुद्ध खड़े हैं? यदि आपकी दृष्टि अब हम पर न रहे, तो पाण्डवों और यादवों का यश और कीर्ति उसी क्षण मिट जाएगी, जैसे प्राण के निकलते ही शरीर की कान्ति लुप्त हो जाती है। उन्होंने अपने ही राज्य की ओर देखा और इसका प्रमाण पाया: यह भूमि सुन्दर इसलिए है क्योंकि इस पर उनके चरण पड़े हैं, इसके खेत अन्न से भरपूर हैं, नदियाँ पूर्ण वेग से बहती हैं, पर्वत खनिजों से समृद्ध हैं, और सागर धन से परिपूर्ण हैं — ये समस्त वरदान उनकी एक ही दृष्टि से जुड़े हैं (श्लोक 37-40)।

स्नेह के बन्धन को काट दीजिए

अन्ततः कुन्ती स्तुति से याचना की ओर मुड़ीं — किन्तु उनकी याचना भी केवल भगवान् के लिए थी। उन्होंने भगवान् से, जो जगत् के शासक, आत्मा और स्वयं सार हैं, प्रार्थना की कि वे उस दृढ़ स्नेह-रज्जु को काट दें जो उन्हें अपने स्वजनों — पाण्डवों और वृष्णियों — से बाँधे रखती है। उस बन्धनकारी प्रेम के स्थान पर उन्होंने केवल उन्हीं की ओर बहते एक अखण्ड प्रेम की याचना की।

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।

रतिमुद्रहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥

tvayi me 'nanya-viṣayā matir madhu-pate 'sakṛt । ratim udvahatād addhā gaṅgevaugham udanvati ॥ 42 ॥

अर्थ: हे मधुपते! मेरी बुद्धि, केवल आप ही में अनन्य रूप से लगी हुई, निरन्तर आपकी ओर प्रेमपूर्वक प्रवाहित होती रहे — जैसे गंगा अविरल रूप से अपना जल समुद्र में उँडेलती है। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 42)

फिर, अपनी स्तुति के अन्तिम शब्दों में, उन्होंने उन्हें अनेक नामों से एक साथ प्रणाम किया — कृष्ण के सखा और वृष्णिवंश के गौरव के रूप में, पृथ्वी पर भार बने अभिमानी राजवंशों को भस्म करने वाली प्रचण्ड शक्ति के रूप में, गौओं, ब्राह्मणों और देवताओं का कष्ट हरने वाले गोविन्द के रूप में, तथा समस्त लोकों को शिक्षा देने वाले योगेश्वर के रूप में।

भगवान् को मुस्कान और युधिष्ठिर का शोक

जब पृथा ने इस प्रकार मधुर वचनों में वैकुण्ठपति भगवान् की असीम महिमा का गान किया, तब वे मन्द-मन्द मुस्कराये, मानो अपनी माया से उन्हें मोहित कर रहे हों। “ऐसा ही हो,” कहकर श्रीकृष्ण ने विदा ली और पुनः हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया; और अन्य स्त्रियों से भी विदा लेकर वे द्वारका के लिए प्रस्थान करने ही वाले थे कि राजा युधिष्ठिर ने स्नेहवश उन्हें रोक लिया।



राजा युधिष्ठिर, व्यास और स्वयं श्रीकृष्ण से भी सान्त्वना न पाकर, युद्ध में मारे गये स्वजनों के शोक में डूब जाते हैं।

क्योंकि राजा को सान्त्वना नहीं मिल पा रही थी। यद्यपि व्यास तथा विधाता की गति समझने वाले अन्य ऋषियों ने, और स्वयं श्रीकृष्ण ने, उन्हें पवित्र आख्यानों से सान्त्वना दी, तथापि युधिष्ठिर विमूढ़ मन से अपने स्वजनों की मृत्यु पर सन्तप्त होते रहे। स्नेह और मोह से अभिभूत होकर वे विलाप करने लगे: “देखो, मेरे हृदय में जड़ जमाये इस अज्ञान को! मुझ दुर्बुद्धि ने इस शरीर के लिए, जो केवल गीदड़ों और कुत्तों का भोजन है, समूची सेनाओं का नाश करा दिया। मुझ बालक-, ब्राह्मण- और स्वजन-द्रोही के लिए कोई उद्धार नहीं। शास्त्र कहते हैं कि धर्मयुद्ध में शत्रुओं का संहार करने वाला राजा पापी नहीं होता — किन्तु वह रक्षक वचन भी मेरे हृदय को शान्ति नहीं देता।” उन्होंने शोक किया कि जिन विधवा स्त्रियों का अनिष्ट हुआ, वह किसी गृहस्थ-यज्ञ से कभी धुल नहीं सकता।

प्रमुख श्लोक

कुन्ती की सर्वोच्च स्तुति सम्पूर्ण अध्याय को एक ही समर्पण-श्लोक में समेट लेती है:

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णयुषभावनिधुग्
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥

śrī-kṛṣṇa kṛṣṇa-sakha vṛṣṇy-ṛṣabhāvani-dhrug- rājanya-vaṁśa-dahanānapavarga-vīrya । govinda go-dviija-surārti-harāvātāra yogeśvarākhila-guro bhagavan namas te ॥ 43 ॥

अर्थ: हे श्रीकृष्ण, अर्जुन के सखा, वृष्णियों में श्रेष्ठ, पृथ्वी को भार-रूप राजकुलों को भस्म करने वाली अग्नि, जिनका पराक्रम कभी क्षीण नहीं होता; हे गोविन्द, जिनका अवतार गौओं, ब्राह्मणों और देवताओं का कष्ट हरता है; हे योगेश्वर, समस्त लोकों के गुरु, भगवन् — आपको नमस्कार है। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 43)

और अध्याय युधिष्ठिर की इस अन्तर्दृष्टि पर समाप्त होता है कि हिंसा का भार कितना गुरु है:

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ।

भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥

yathā pañkena pañkāmbhaḥ surayā vā surākṛtam । bhūta-hatyām tathaiivaikām na yajñair mārṣṭum arhati ॥ 52 ॥

अर्थ: जैसे कीचड़ से कीचड़युक्त जल स्वच्छ नहीं होता, न मदिरा से मदिरा का दोष धुलता है, वैसे ही एक भी प्राणी की हत्या किसी भी संख्या के यज्ञों से धोई नहीं जा सकती। (स्कन्ध 1, अध्याय 8, श्लोक 52)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् अपने भक्तों की भीतर से रक्षा करते हैं। जब उत्तरा ने पुकारा, तब श्रीहरि — प्रत्येक हृदय में स्थित आत्मा — ने अपनी शक्ति से उसके गर्भ को आवृत कर लिया (श्लोक 14)। दिव्य रक्षा दूर नहीं; वह हमारी सत्ता के अन्तरतम केन्द्र से कार्य करती है।
2. विपत्ति एक छिपी हुई कृपा हो सकती है। कुन्ती की सबसे प्रसिद्ध प्रार्थना विपत्ति का स्वागत करती है, क्योंकि कष्ट में अभिमानी हृदय रीत जाता है और भगवान् की ओर मुड़ता है, और उनका दर्शन समस्त पुनर्जन्म का अन्त कर देता है (श्लोक 25)। ठीक से ग्रहण किया गया कष्ट स्मरण का द्वार बन जाता है।
3. भगवान् उनके हैं जिनके पास अपना कहने को कुछ नहीं। कुल, शक्ति, विद्या और धन के मद से भरा व्यक्ति उनका नाम तक नहीं ले पाता; वे “अकिंचनों के धन” हैं। स्वामित्व नहीं, अपितु विनम्रता उन तक मार्ग खोलती है।
4. भक्ति राहत नहीं, प्रेम माँगती है। कुन्ती प्रार्थना करती हैं कि उनका स्वजनों से स्नेह कट जाये और उनका प्रेम केवल भगवान् की ओर गंगा की भाँति समुद्र में बहे (श्लोक 42)। सच्ची प्रार्थना हर अन्य वरदान से ऊपर स्वयं भगवान् को चाहती है।
5. महान् जन भी शोक में डूब सकते हैं। धर्म के पुत्र युधिष्ठिर तक पश्चात्ताप से अभिभूत हो जाते हैं और कृष्ण से भी सान्त्वना नहीं पाते (श्लोक 46)। अध्याय निष्कपट भाव से दिखाता है कि शोक श्रेष्ठ जनों को भी घेरता है — और आगे आने वाली उपचारक शिक्षाओं की भूमिका रचता है।
6. भगवान् का अवतार उनकी मधुर लीला है। अजन्मा और निष्क्रिय होते हुए भी वे जगत् के कल्याण हेतु जन्म लेते और कर्म करते हैं — भक्तों की रक्षा, पृथ्वी का भार-हरण, और ऐसी कथाएँ छोड़ जाते हैं जो सुनने वाले सबको पावन कर देती हैं।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक चौंका देने वाली निष्कपटता है। यह यह नहीं दर्शाता कि भक्ति समस्त पीड़ा हर लेती है। युद्ध के विजेता नदी के तट पर रोते बैठे हैं; एक माँ अपने अजन्मे पौत्र के लिए थरथराती है; एक धर्मात्मा राजा अपने को क्षमा नहीं कर पाता। और फिर भी, इस समस्त शोक में पिरोई हुई है एक शान्त और सुदृढ़ धारा — हानि के मध्य भगवान् की ओर मुड़ने की धारा। कुन्ती भगवान् से यह नहीं माँगती कि वे उन्हें सुखी बना दें। वे माँगती हैं कि वे उन्हें अपने निकट रखें, भले ही वह निकटता कष्ट में लिपटकर आये। यह एक कठिन प्रार्थना है, और एक निष्कपट प्रार्थना है। हममें से अधिकांश अपने कष्टों के टल जाने की प्रार्थना करते हैं; उन्होंने यह प्रार्थना की कि उनका हृदय फिर कभी इतना भरा और इतना अभिमानी न हो जाये कि वह उस उद्धारकर्ता को भूल जाये। जब हम इस अध्याय के साथ बैठते हैं, तो हमें कोमलता से आमन्त्रित किया जाता है कि हम उन अनेक वस्तुओं पर अपनी पकड़ ढीली करें जिन्हें हम कसकर थामे हैं, और अपने प्रेम को, नदी के समुद्र की ओर बहने की भाँति, उस भगवान् की ओर बहने दें जो हमारे अपने भय से भी हमारे अधिक निकट हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपनी एक चिन्ता लें — किसी प्रियजन के लिए कोई भय, या कोई ऐसा पश्चात्ताप जिसे आप मिटा नहीं सकते — और, उत्तरा तथा कुन्ती की भाँति, उसे अकेले ढोने के बजाय सीधे भगवान् के हाथों में सौंप दें। एक सरल प्रार्थना कहें: “आपके अतिरिक्त मुझे कोई शरण नहीं दिखती।” फिर महारानी कुन्ती के वचन धीरे-धीरे पढ़ें या दोहराएँ, और एक पंक्ति को दिनभर अपने हृदय में ठहरने दें। अभ्यास छोटा और सच्चा हो — आरम्भ के लिए इतना ही पर्याप्त है।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का अष्टम अध्याय समाप्त होता है, जिसे भगवत्प्राप्त जन परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 8 में, हमने शोकाकुल परिवार को गंगा-तट पर अपने मृतकों को जल अर्पित करते देखा; हमने गर्भवती उत्तरा को भय से श्रीकृष्ण की ओर दौड़ते देखा, और भगवान् को ब्रह्मा के अमोघ अस्त्र से उसके गर्भ के शिशु की रक्षा करते तथा भावी सम्राट परीक्षित के रूप में कुरु-वंश को अक्षुण्ण रखते देखा। हमने महारानी कुन्ती की अनुपम स्तुति सुनी — विपत्ति का स्वागत करती हुई, राहत के बदले प्रेम माँगती हुई, और यह याचना करती हुई कि उनका हृदय गंगा के समुद्र की ओर बहने की भाँति भगवान् की ओर बहे। और हमने साध्वी युधिष्ठिर को उस शोक में डूबते देखा जिसे कृष्ण की सान्त्वना भी नहीं हर सकी — वह शोक जो आगामी अध्यायों की महान् शिक्षाओं का द्वार खोलता है। यहाँ भक्ति हानि का मुख धारण करती है, और इसी से वह और भी सुन्दर हो उठती है। हम इस विधवा महारानी से सीखें कि भगवान् को अपने से भी अधिक कसकर थामें।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ और आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, अष्टम अध्याय, ग्रन्थ पृष्ठ 27-32।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेख एक मौलिक, श्रद्धामय भक्तिपूर्ण पुनर्कथन है (Copyright MODE B)। किसी प्रकाशक का अनुवाद या टीका पुनरुत्पादित नहीं की गई; श्लोकों के “अर्थ” मौलिक श्रद्धामय भावानुवाद हैं। यह लेख किसी प्रकाशक या संस्था के प्रायोजन/समर्थन का संकेत नहीं करता।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-8-prayers-of-queen-kunti-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

